वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 20 239 अंक : 11

द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय अधिकार

समुद्घात विन तनमापमय संकोच से विस्तार से।
व्यवहार से यह जीव असंख्य प्रदेशमय परमार्थ से।।१०।।
भूजलानलवनस्पति अर वायु थावर जीव हैं।
दो इन्द्रियों से पाँच तक शंखादि सब त्रस जीव हैं।।११।।
पंचेन्द्रियी संज्ञी-असंज्ञी शेष सब असंज्ञि ही हैं।
एकेन्द्रियी हैं सूक्ष्म-बादर पर्याप्तकेतर सभी हैं।।१२।।
भवलीन जिय विध चतुर्दश गुणथान मार्गणथान से।
अशुद्धनय से कहे हैं पर शुद्धनय से शुद्ध हैं।।१३।।
उत्पादव्ययसंयुक्त अन्तिम देह से कुछ न्यून हैं।
लोकाग्रथित निष्कर्म शाश्वत अष्टगुणमय सिद्ध हैं।।१४।।
मूर्त पुद्गल किन्तु धर्माधर्मनभ अर काल भी।
मूर्तिक नहीं हैं तथापि ये सभी द्रव्य अजीव हैं।।१५।।
थूल सूक्षम बंध तम संस्थान आतप भेद अर।
उद्योत छाया शब्द पुद्गलद्रव्य के परिणाम हैं।।१६।।
स्वयं चलती मीन को जल निमित्त होता जिसतरह।
चलते हुए जिय-पुद्गलों को धरमदरव उसीतरह।।१७।।
छाया निमित्त ज्यों गमनपूर्वक स्वयं ठहरे पथिक को।
अधरम त्यों ठहरने में निमित्त पुद्गल-जीव को।।१८।।

यही सब तत्त्व का निचोड़ है

भगवान आत्मा स्वयं सहज ज्ञानस्वरूप है। वह मात्र जानता है, मात्र ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव ही है। ऐसे अनादि-अनन्त ध्रुवतत्त्व ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा की बात सुनी नहीं, उसके स्वरूप और अनंत वैभव को आजतक जाना-पहचाना नहीं, समझने की कोशिश भी नहीं की, जानने की जरूरत ही नहीं समझी। कदाचित् प्रसंगवश धर्म की बात सुनी भी तो बस दया, दान, व्रत, उपवास, पूजा-भक्ति, तीर्थयात्रा तक ही धर्मचर्चा सीमित रही, उसी में सन्तुष्ट रहा। इसीप्रकार पूरा जीवन चला गया। आत्मा के स्वरूप की पहचान न होने से यों ही चार गति व चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरण के अनंत दुःख भोगता रहा। शेष रहे-सहे जीवन में भी आत्मज्ञान नहीं हुआ। यदि यों ही खाने-कमाने में जीवन चला गया तो अनंतकाल के लिये फिर संसार सागर में डूब जायेगा।

जगत के स्वार्थीजन भी अपने-अपने सामाजिक, लौकिक, एवं धार्मिक तीर्थों आदि के उद्धार हेतु पाँच-पच्चीस हजार रुपये खर्च करनेवालों को दानवीर, धर्म-धुरंधर, श्रावकशिरोमणि, तीर्थभक्त आदि न जाने क्या-क्या उपाधियाँ देकर उन्हें संतुष्ट कर देते हैं। भले उनसे धर्म का अंकुरा भी न उगा हो। ऐसे लोगों को चाहिये कि वे अपनी प्राप्त सम्पत्ति का सदुपयोग तो अवश्य करें; परन्तु इसे ही धर्म मानकर वस्तुस्वरूप से वंचित न रहें। धर्म का सही स्वरूप जानने/समझने और उसे आचरण में लाने का प्रयास अवश्य करें; क्योंकि धर्म पैसों से नहीं, धर्म तो अपने अन्तर में विराजमान चैतन्य महाप्रभु अपने भगवान आत्मा के आश्रय से ही प्रगट होता है।

जिनधर्म की प्रभावना के लिए अपनी दान देने की शक्ति को न छिपाकर लाखों रूपये दान में दो, धर्म आराधना के निमित्त आवश्यकतानुसार विशाल जिनमंदिर बनाओ, ऐसे भाव सद्ग्रहस्थों को आना ही चाहिए; परन्तु इन सब के साथ राग मंद हुआ हो तो शुभभावों से मात्र पुण्य बन्ध ही होता है, धर्म नहीं होता। धर्मी जीव तो ऐसे पुण्य के जो परिणाम होते हैं, उनका अकारक व अवेदक ही रहता है।

ज्ञानमूर्ति प्रभु भगवान आत्मा चैतन्य चक्षु है। जिसप्रकार आँख दृश्य पदार्थों को देखते हुए, उन पदार्थों में प्रविष्ट नहीं हो जाती; उसीप्रकार चैतन्य चक्षु प्रभु आत्मा पर को जानते हुए पर में प्रविष्ट नहीं होता। पर से भिन्न रहकर पर को मात्र जानता ही है। **यही सब तत्त्वज्ञान का निचोड़ है।** अज्ञानी मिथ्यादृष्टि इस रहस्य को नहीं जानता, सम्यदृष्टि इस रहस्य को जानता है।

– प्रवचनरत्नाकर भाग-9, पृष्ट -91,92

देह का उपकार आत्मा का अपकार है

पूज्यपाद आचार्य देवनन्दिस्वामी के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 19 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है –

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम् ।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकं ।।19।।

जो जीव (आत्मा) का उपकार करनेवाले होते हैं, वे शरीर का अपकार (बुरा) करनेवाले होते हैं। जो चीजें शरीर का हित या उपकार करनेवाली होती हैं, वही चीजें आत्मा का अहित करनेवाली होती हैं।

(गतांक से आगे)

यहाँ निमित्त की अपेक्षा कथन करते हैं। आत्मा को उपयोगी अनुष्ठान शरीर को अहित में – अपकार में निमित्त हैं। इससे विपरीत धनादि तथा भोजन वगैरह शरीर की क्षुधादि दूर करने में निमित्त होने से शरीर को उपकार करने में निमित्त हैं ; परन्तु धन प्राप्त करने में – कमाने में पाप और चिंता होती है। ऐसे पाप से दुर्गति में गमन करना पड़ता है ; इसलिये धनादि आत्मा को अपकारक ही हैं।

अरे ! धन कमाने में पाप लगता है, वह तो आत्मा को नुकसानदायक है ही, दुर्गति में ले जानेवाला है ही; परन्तु धन का दान देना भी शुभभाव का कारण होने से बन्ध का ही कारण है। लक्ष्मी की ओर ध्यान जाना भी बन्ध का कारण है। भाई ! वीतराग मार्ग जुदा है। लक्ष्मी तो जड़ चीज है, उसका दान देकर, उसका स्वामी बनकर अभिमान करता है कि देखो ! मैं कितना दान देता हूँ, कितने जिनमंदिर बनवाता हूँ – ऐसा अंदर में भाव आता है; इससे उसे मिथ्यात्व का बन्ध होता है और मिथ्यात्व ही महापाप है। वास्तव में तो धन का एक कण भी किसी को दे नहीं सकते और किसी से ले नहीं सकते; क्योंकि वह तो जड़ है और स्वयं चेतन है। दोनों स्वतंत्र द्रव्य हैं। स्वद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर परद्रव्य का लक्ष्य करना और उसका स्वामी बनना महामिथ्यात्व है। उसमें स्वयं को बहुत नुकसान है, स्वयं की दृष्टि चूक जाते हैं।

पैसों को रखना, उससे बच्चों को बड़ा करना, पालना-पोसना; उनका विवाह करना - इन सभी में पाप ... पाप और पाप ही है, फिर भी जीव उसके लिए अज्ञानवश लाभदायक और करने योग्य मानता है; परन्तु वह तो दु:खदायक, नुकशानकारक तथा दुर्गति का कारण है। आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान और उसमें रमणता वह ही आत्मा को लाभदायक है।

जीव नरक में जाये या स्वर्ग में जाये; परन्तु आत्मा को स्वयं के श्रद्धा-ज्ञान बिना अन्य सबकुछ दु:खदायक ही है, बन्धकारक ही है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, पैसा, इज्जत, कीर्ति, मकान आदि आत्मा के अहित में निमित्त हैं। ऐसा तू निश्चित कर तभी तुम्हारी दृष्टि पर से हटकर स्वभाव की तरफ ढलेगी, उसमें ही तुम्हारा हित है। सुख का साधन तो स्वयं ही है। तू बाहर क्यों देखता है? परद्रव्य की तरफ से तू अपना ध्यान हटा ले - यही करने लायक है।

प्रभु ! तुम्हारा लक्ष्य तो तेरे अंतर में पड़ी शुद्ध लक्ष्मी पर होना चाहिए। जितना परलक्ष्य है, वह बहुत नुकशानकारक-दु:खदायक है - ऐसा तू समझ भाई ! शरीर को धनादिक लाभदायक भले हों; परन्तु तुझे तो नुकसानदायक ही हैं। वीतरागी संतों ने यह बात कही है। पुद्गल के रजकणों की पर्याय जिस समय जैसी होनी होती है, वैसी ही होती है - पलटते प्रवाह में धन के रजकण जहाँ से आना हो वहाँ से वैसे ही आकर चले जाते हैं। उसका कर्ता तो तू है ही नहीं; अपितु इन्द्र, नरेन्द्र और जिनेन्द्र भी उसमें कुछ भी फेर-फार नहीं कर सकते। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता ; इसलिये ऐसा नक्की कर कि धनादि द्वारा जीव को उपकार की तनिक भी गंध नहीं है। एक मात्र धर्म ही जीव का उपकारक है।

शुद्ध चैतन्यपिण्डरूप की श्रद्धा-ज्ञान और एकाग्रतारूपी धर्म ही आत्मा को उपकारक है, अन्य कोई आत्मा को उपकारक नहीं है। पुण्य-पाप के परिणाम भी जीव को नुकशानदायक ही हैं। आत्मज्ञान-आत्मदर्शन एवं आत्मशांति के अतिरिक्त पुण्य-पाप का विकल्प, शरीर, लक्ष्मी आदि जीव को बहुत अपकारक ही हैं। जिसमें तू नहीं, उससे तुझे उपकार कैसे हो ? जिसमें तू नहीं, उसमें लक्ष्य करने से तुझे नुकशान ही है।

बाहर की महिमा वाले जीव को स्वयं की महिमा कभी आती ही नहीं । विजली की चमक जैसे संयोगो में ही अनादि से जीव को लाभ की बुद्धि पढ़ी है, इसकारण जीव को उसमें ही सुख की कल्पना होती है। मेरा स्वाश्रयभाव ही मुझे उपकारी है - ऐसा अनंतकाल में किसी भी समय स्वयं ने निर्णय किया ही नहीं, पर का ही अभ्यास किया है। भाई ! तुझे

स्वाश्रित और सुखी बनाने के लिए यह वीतराग की बात है।

आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-स्थिरता ही आत्मा को हितकर है, उपकारी है। परद्रव्य का जो होना है, वह तो होगा ही मैं तो स्वयं के द्रव्य का लाभ लूँ - ऐसा भाव होना चाहिए। परमात्मा वीतराग-सर्वज्ञ के इस मार्ग बिना जीव को अन्य कोई भी मार्ग उद्धारकारक नहीं है। परद्रव्य का आश्रय छोड़कर स्वद्रव्य का आश्रय करना ही एक सच्चा मार्ग है।

यहाँ शिष्य पुन: दूसरा प्रश्न करता है कि महाराज ! हमने तो यह समझा है कि **'शरीर सुखी तो सब सुखी'** और शरीर ही वास्तव में धर्म का मुख्य साधन है। कारण कि शरीर में रोग होता है तो एकाग्रता से धर्मध्यान कभी नहीं हो सकता; इसलिये निरोग शरीर धर्म हेतु उपकारी है।

शिष्य का इसप्रकार कथन सुनकर मुनिराज कहते हैं कि शरीर के रोग को व निरोगता को आत्मा स्पर्श भी नहीं करता; इसलिये शरीर की रोगी अथवा निरोगी अवस्था के साथ आत्मा का कोई संबन्ध भी नहीं है। रोग के समय भी आत्मा रोग से जुदा रहकर स्वयं को जान सकता है। मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ न ! ऐसा भाव जीव को अंतर से आना चाहिए और ऐसी स्थिति अंतर में होने पर जीव को जन्म-मरण का अभाव हो जाता है। उसे अल्पकाल में ही अविनाशी सिद्धदशा की प्राप्ति हो जाती है।

अब शिष्य विशेषरूप से कहता कि शरीर के रोग को दूर करना मुश्किल नहीं है, अंतर में आत्मा का ध्यान करते समय आत्मा में शांति मिलती है और शरीर का रोग चला जाता है। जब आत्मा स्वभाव में चरण करता है, तब अंतर में तो लाभ होता ही है; परन्तु पुण्य बंधने से उसके फल में शरीर भी निरोग हो जाता है।

मुनिराज ने शिष्य द्वारा कही गई बात कि धन से आत्मा का उपकार होता है, इसका खण्डन किया तब शिष्य ध्यान से शरीर के उपकार की बात कहकर उसके अनुसंधान में वह कहता है कि तत्त्वानुशासन के 217 वें कलश में इस विषय सम्बन्धी बात है कि जो इस लोक संबन्धी फल है और परलोक संबन्धी फल है, उन दोनों में प्रधान कारण ध्यान ही है और ध्यान के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।

इस विषय में आचार्यदेव निषेध करते हुए कहते हैं कि जो तू कहता है, वह सही नहीं है। ध्यान के द्वारा शरीर का उपकार चिंतनीय नहीं। ध्यान से तुम्हारा काम सधता है, शरीर को उपकार हो या न हो, इसलिये उस तरफ तू लक्ष्य न कर ! इसी बात को यहाँ गाथा द्वारा कहते हैं -

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य, इतः पिण्याकखण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये, क्वाद्रियन्तां विवेकिनः ।। 20 ।।

इसी ध्यान से दिव्य चिंतामणि मिल सकता है, इसी से खली के टुकड़े भी मिल सकते हैं – इसप्रकार ध्यान से दोनों मिल सकते हैं, तब विवेकी लोग किस ओर आदर बुद्धि करेगें ?

देवों द्वारा सेवित चिंतामणि महाभाग्य से मिलता है, उस चिंतामणि से खली का टुकड़ा न मंगाओ भाई ! वह तो लाखों का महल मंगानेयोग्य है। वैसे ही निज परमात्मारूपी चिंतामणि से आत्मा की शांति मंगाओ भाई ! आत्मध्यान से खली के टुकड़े के समान शरीर की निरोगता मंगाने योग्य नहीं है। जितनी अंतर में एकाग्रता करोगे, उसके फल में उतनी शांति मिलेगी – ऐसा चिंतामणि आत्मा है।

अज्ञानी जीव का लक्ष्य वर्तमान पर्याय, राग और संयोगों पर है, उसकी ही महिमा उसे आती है। उससे महिमावंत निजशुद्धात्मा की महिमा अज्ञानी को नहीं आती। पर्याय अंश के पीछे विराजमान जीव तो सत्चिदानन्द प्रभु ध्रुव है, उसकी महिमा आवे तो उसकी एकाग्रता हो और साक्षात् उसीसमय अतीन्द्रिय आनन्द का फल उसे मिलता है। उसके पीछे पुण्य के फल की कोई कीमत नहीं है। नजर पड़ने मात्र से निधान हाथ में आ जाये – ऐसा आत्मा है। ऐसे निधान का लक्ष्य चूककर सड़े खली के टुकड़े जैसी शरीर की निरोगता की ओर लक्ष्य न दे भाई ! शरीर की निरोगता तो क्या ? चक्रवर्ती का वैभव हो या इन्द्र का वैभव हो; परन्तु आत्मशांति एवं आनन्द के धारक समकिती को तो वह सब खली के टुकड़े बराबर भासित होता है।

देखो ! यहाँ कहते हैं कि यह बात तो बालक, स्त्री, बृद्ध, युवा सभी के लिए है। जो आत्मा का ध्यान करता है, वही आत्मशांतिरूपी चिंतामणि रत्न प्राप्त कर सकता है। इस लोक सम्बन्धी ही जिसे चिंता है, उसे तो रौद्रध्यान और आर्त्तध्यान के सिवाय धर्मध्यान और शुक्लध्यान होता ही नहीं; परन्तु परलोक सम्बन्धी चिंता एवं आत्मा की चिंता रखने वाला धर्मध्यान और शुक्लध्यान की उपासना कर सकता है। शरीर की चिंता तो अनादिकाल से करता आया है, जिससे दु:खी ही हुआ है। एक बार तो आत्मा की चिंता कर ! एक आत्मा की तरफ ही दृष्टि–ज्ञान और स्थिरता की भावना करनेयोग्य है। पुण्य की अथवा शरीर के निरोगता की भावना धर्मी को नहीं होती। उसे तो आत्मशुद्धि की ही भावना करने योग्य है। **(क्रमशः)**

जिनवाणी एवं गुरु को नमस्कार करते हैं

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार नामक ग्रन्थराज पर मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने तात्पर्यवृत्ति नामक अत्यन्त गम्भीर संस्कृत टीका लिखी है।

उक्त संस्कृत टीका के मंगलाचरण के **द्वितीय,तृतीय एवं चतुर्थ श्लोक** पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

अब दूसरे श्लोक में जिनवाणी को नमस्कार करते हैं –

वाचं वाचंयमीन्द्राणां, वक्त्रवारिजवाहनम् ।
वन्दे नयद्वयायत्तवाच्यसर्वस्वपद्धतिम् ।।2।।

वाचंयमीन्द्रों का अर्थात् जिनदेवों का मुखकमल जिसका वाहन है और दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की जिसकी पद्धति है, उस वाणी की (जिनभगवन्तों की स्याद्वादमुद्रित वाणी की) मैं वन्दना करता हूँ।

वाचंयमीन्द्रों = मुनियों में प्रधान अर्थात् जिनदेव, मौन से रहनेवालों में श्रेष्ठ अर्थात् जिनदेव। वाचंयमी अर्थात् मुनि, मौन से रहनेवाले अर्थात् वाणी के संयमी।

जिन मुनियों ने स्वरूप में लीन होकर वाणी के विकल्प को त्यागा है, उनका नाम वाणी का जीतनेवाला है; इसलिये सर्वज्ञदेव श्रेष्ठ हैं। मैं वाणी का कर्ता हूँ – ऐसा जो मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है; परन्तु मैं वाणी का कर्ता नहीं – ऐसे भानपूर्वक जिसने चैतन्य में रमकर वाणी को जीता है, साधा है – ऐसे जिनेन्द्रदेव की वाणी स्याद्वादरूप है। वह वाणी सर्वज्ञदेव के मुखकमल से निकली हुई है, वह वाणी भी नयों के आश्रय में सबकुछ कहनेवाली है।

आत्मा त्रिकाल शुद्ध है और तुम्हारी पर्याय में क्षणिक अशुद्धता भी है – ऐसा दोनों नयों से कहते हैं; परन्तु उसमें दोनों ही नय समानरूप से आदरणीय नहीं हैं। त्रिकाल वह निश्चय और वर्तमान वह व्यवहार। दोनों नयों को जाना कब कहा जाये? कि त्रिकाल

को जानते हुये ज्ञान का जोर त्रिकाल की तरफ ही चला जाये, वर्तमान को ही मात्र न जानता रहे, इसका नाम दोनों नयों का ज्ञान है; परन्तु निश्चय भी आदरणीय और व्यवहार भी आदरणीय – ऐसा माने तो उसे दोनों नयों का यथार्थ ज्ञान नहीं है। जिनवाणी दोनों नयों के आश्रय से कथन करनेवाली है; परन्तु दोनों नयों में निश्चय आदरणीय और व्यवहारनय ज्ञेयमात्र है। त्रिकालस्वभाव का आदर करके उसकी तरफ ढलता हुआ ज्ञान निश्चय है और वर्तमान विषय को जानता हुआ ज्ञान व्यवहार है – ऐसी दोनों नयों के आश्रय में सर्वस्व कहनेवाली जिनवाणी को मैं नमस्कार करता हूँ।

स्वभाव का आदर करता हुआ बाद में विकल्प उठने पर देव–गुरु–शास्त्र का बहुमान करता है, वह आसक्ति का राग है, वह राग पर के कारण नहीं है; क्योंकि स्वभाव के आश्रय से उस विकल्प को भी तोड़ देता है। स्वभाव में राग नहीं है और पर के कारण भी राग नहीं। यदि पर के कारण राग हो तो अनंत परद्रव्यें त्रिकाल रहती हैं, तब फिर राग भी त्रिकाल हो जायेगा ; अत: वह राग स्वयं मिथ्यादृष्टि का है।

हे नाथ ! आप वचन के संयमियों में श्रेष्ठ हैं और आपकी वाणी भी श्रेष्ठ है। आपकी वाणी पूर्ण नयों की भाषा में निबद्ध है। उस वाणी को मैं वन्दन करता हूँ। मुझे विकल्प उठता है; इसलिये मैं वन्दन करता हूँ; परन्तु उसमें परमात्मा और उनकी वाणी के अतिरिक्त दूसरी तरफ लक्ष्य नहीं है – ऐसे भगवान को और भगवान की वाणी को वन्दन करके मांगलिक करता हूँ।

भगवान कुन्दकुन्ददेव द्वारा रचित नियमसार की टीका पद्मप्रभमलधारी देव ने की है। वे जंगल में वसनेवाले आत्मानन्द में झूलनेवाले संत हुए हैं।

मंगलाचरण में पहले जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके वाद में जिनवाणी को नमस्कार किया। अब यहाँ तीसरे श्लोक में गुरु को नमस्कार करते हैं।

सिद्धान्तोद्‌ध श्रीधवं सिद्धसेनंतर्काब्जार्कं भट्टपूर्वाकलंकम्।
शब्दाब्धीन्दुं पूज्यपादं च वन्दे तद्विद्याढ्यं वीरनन्दिं व्रतीन्द्रम्।।3।।

उत्तम सिद्धान्तरूपी श्री के पति सिद्धसेन मुनीन्द्र की, तर्ककमल के सूर्य भट्ट अकलंक मुनीन्द्र की, शब्दसिन्धु के चन्द्र पूज्यपाद मुनीन्द्र की और तद्विद्या से (सिद्धान्तादि तीनों के ज्ञान से) समृद्ध वीरनन्दि मुनीन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ।

उत्तम सिद्धान्तरूपी लक्ष्मी के पति सिद्धसेन मुनीन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ। ये

मुनि महा निर्ग्रन्थ एवं भावलिंगी संत हुये हैं। महानस्वरूप लक्ष्मी के स्वामी हुए हैं, उनको यहाँ नमस्कार किया है।

तर्करूपी कमल को खिलानेवाले सूर्य के समान अकलंक मुनीन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ। ये भी भावलिंगी संत हुए हैं, आत्मा के आनन्द में झूलते थे। इन्होनें तत्त्वार्थसूत्र की तत्त्वार्थराजवार्तिक टीका एवं अनेक न्याय के ग्रन्थों को बनाया है।

शब्दसिंधु को उछालने वाले चन्द्रसमान पूज्यपाद मुनीन्द्र को नमस्कार करता हूँ। ये भी महाभावलिंगी संत हुए हैं। इन्होनें तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि नाम की टीका लिखी है।

वे सिद्धान्त आदि तीन ज्ञान (सिद्धान्तरूपी लक्ष्मी, तर्करूपी सूर्य एवं शब्दसिंधु) से समृद्ध – ऐसे श्री वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती को नमस्कार हो। ये वीरनन्दि उनके स्वयं (पद्मप्रभमलधारीदेव) के गुरु हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव की इस ग्रन्थ की टीका की शुरुआत करने के पहले संतों का स्मरण करके उनके चरणकमल में नमस्कार करता हूँ।

इसप्रकार देव–शास्त्र और गुरु को नमस्कार किया।

यहाँ यह टीका किसके लिये करता हूँ ? उसे अब कहते हैं –

अपवर्गाय भव्यानां शुद्धये आत्मन: पुन:।
वक्ष्ये नियमसारस्य वृत्तिं तात्पर्य्यसंज्ञिकाम्।।4।।

भव्यों के मोक्ष के लिये तथा निज आत्मा की शुद्धि के हेतु मैं नियमसार की **तात्पर्यवृत्ति** नामक टीका को कहूँगा।

पुण्य बंधे और स्वर्ग मिले – ऐसा टीका का आशय नहीं है; परन्तु भव्यजीव आत्मा को समझकर मोक्ष प्राप्त करे, उसके लिये मैं यह टीका बनाता हूँ।

पंचमकाल में मोक्ष नहीं है – ऐसा विचार मत करो ! जो जीव भव्य है और जो आत्मा को समझकर मोक्ष का कामी है, वही जीव रत्नत्रय का आराधक होकर मोक्ष को प्राप्त करनेवाला है। मंगलाचरण में जैसा देव–शास्त्र–गुरु को नमस्कार किया है, उसके सिवाय अन्य कुदेव–कुशास्त्र–कुगुरु की मान्यता छूट गई है – ऐसे जीवों को यह बात समझाते हैं। उन भव्यजीवों के लिए यह टीका है। जो जीव लायक हैं, मोक्ष के लिये जिनकी तैयारी हो गई है – ऐसे मुमुक्षुओं के लिए यह टीका लिखी जा रही है। ऐसे श्रोता तो वे ही होना चाहिये, जिनको मोक्ष के सिवाय स्वार्गादिक की इच्छा न हो। **(क्रमश:)**

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है, उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है&

उन पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे .....)

आचार्यदेव ने तो कहा है कि - यदि तू अजीव को अपना मानकर उस अजीव का स्वामी बनेगा तो तू अजीव हो जायेगा अर्थात् तेरी श्रद्धा में जीवतत्त्व नहीं रहेगा। इसलिए हे भाई ! यदि तू अपनी श्रद्धा में अपने जीवतत्त्व को जीवित रखना चाहता हो तो अपने आत्मा को ज्ञायकस्वभावी जानकर उसी का स्वामी बन और अन्य का स्वामित्व छोड़।

प्रश्न - मुनियों ने तो धन-मकान-स्त्री-वस्त्रादि का त्याग कर दिया है; इसलिए वे तो उनके स्वामी नहीं हैं; किन्तु हम गृहस्थों के तो वह सब होता है; इसलिए हम तो उसके स्वामी हैं न ?

उत्तर - अरे भाई ! क्या मुनि का और तेरा (गृहस्थ का) आत्मा भिन्न-भिन्न प्रकार का है ? यहाँ आत्मा के स्वभाव की बात है; जगत का कोई भी आत्मा परद्रव्य का स्वामी तो है ही नहीं। सिद्ध भगवान या संसारी मूढ़ प्राणी; केवली भगवान या अज्ञानी; मुनि या गृहस्थ - किसी का भी आत्मा परद्रव्य का स्वामी नहीं है। अब, चूँकि मुनियों को तो स्त्री-वस्त्रादि का राग छूट गया है और तुझे वह राग नहीं छूटा; इसलिए पहले निर्णय तो कर कि राग होने पर भी आत्मा का स्वभाव ज्ञायकमूर्ति है; राग का स्वामित्व मेरे ज्ञायकस्वभाव में नहीं है। धर्मी को राग होने पर भी उनके अभिप्राय में ''राग सो मैं'' - ऐसी राग की पकड़ नहीं होती है। चैतन्यस्वभाव को चूककर देहादि पर का स्वामित्व मानना वह तो मिथ्यात्व है ही और शुभाशुभ परिणामों का स्वामित्व भी मिथ्यात्व ही है।

प्रश्न - शुभाशुभ परिणामों का स्वामी आत्मा नहीं है तो कौन है ?

उत्तर - शुभाशुभ परिणाम आत्मा की पर्याय में होते हैं, उस अपेक्षा से तो आत्मा ही उनका स्वामी है; परन्तु यहाँ तो आत्मा के स्वभाव का, आत्मा की शक्ति का वर्णन चल रहा है। शुभाशुभ परिणाम आत्मा का स्वभाव नहीं है; आत्मा तो ज्ञायकस्वभावी है; उस ज्ञायकस्वभाव की दृष्टिवाले धर्मात्मा शुभाशुभ परिणाम के स्वामी नहीं होते। ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से जो सम्यग्दर्शनादि वीतरागी परिणाम हुए उन्हीं के स्वामी होते हैं। अज्ञानी को ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि नहीं है; इसलिए वही शुभाशुभ परिणाम का स्वामी होकर उनमें एकत्वबुद्धिरूप, मिथ्यात्वरूप परिणमित होता है।

धर्मी जानता है कि मैं तो अपने ज्ञान-आनन्दादि अनंत गुणों का स्वामी हूँ और वे ही मेरे स्वभाव हैं। मेरा स्वरूप ऐसा नहीं है कि ''मैं विकार का स्वामी होऊँ।'' विकार का स्वामी तो विकार होता है, मेरा शुद्धभाव विकार का स्वामी कैसे होगा ? मेरे ज्ञायकस्वभाव के साथ एकत्व हुआ जो निर्मल भाव है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वही मेरा स्व है और मैं उसका स्वामी हूँ। अपने इस स्व-धन को मैं कभी नहीं छोड़ता। जो मेरा स्व हो वह मुझसे पृथक् कैसे होगा ? स्वभाव में एकाग्र होने पर रागादि तो मुझसे पृथक् हो जाते हैं; इसलिए वे मेरे स्व नहीं हैं।

जो जिसे अपना मानता है वह उसे छोड़ना नहीं चाहता। जो राग को अपना स्व मानता है वह राग को छोड़ना नहीं चाहता; इसलिए वह राग को अपने स्वभाव से पृथक् नहीं जानता; इसलिए वह तो मिथ्यादृष्टि ही है। जो ऐसा जाने कि मैं तो ज्ञायकस्वभाव हूँ, राग मेरे स्वभाव से भिन्न भाव है - ऐसा जानकर ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शनादि भाव प्रगट करे तो फिर उसे जो अल्पराग रहता है वह अस्थिरताजनित चारित्रा का दोष कहा जाता है। उसे श्रद्धा में तो ज्ञायकभाव का ही स्वामित्व वर्तता है, राग का स्वामित्व नहीं वर्तता; इसलिए श्रद्धा का दोष छूट

गया है; परन्तु जो जीव सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमित नहीं होता और पर के तथा राग के ही स्वामित्वरूप से परिणमित होता है उसकी तो श्रद्धा ही मिथ्या है और श्रद्धा का दोष अनन्त संसार का कारण है।

प्रश्न - अरहंत एवं सिद्ध भगवान को प्रभु, स्वामी, नाथ क्यों कहा जाता है, जब वे किसी के स्वामी हैं ही नहीं ?

उत्तर - भगवान की और गुरु की भक्ति में भले ही ऐसा कहा जाता है कि हे नाथ ! हे जिनेन्द्रदेव ! आप ही हमारे स्वामी हैं; किन्तु वास्तव में तो भगवान का आत्मा उनके केवलज्ञान और आनन्द का ही स्वामी है; वह आत्मा कहीं इस आत्मा का स्वामी नहीं है; इस आत्मा के भाव का स्वामी यह आत्मा स्वयं ही है; अन्य कोई इस आत्मा का स्वामी नहीं है। यदि ऐसा न जाने और सचमुच भगवान को ही अपना स्वामी मान ले तो उसने अपने आत्मा को पराधीन माना है, अपनी भांति समस्त आत्माओं को भी पराधीन स्वभावी माना है; इसलिए भगवान के आत्मा को भी उसने पराधीन माना है। उसने न तो भगवान को पहिचाना है और न उनकी भक्ति करना ही जानता है।

भगवान की सच्ची भक्ति करनेवाला जीव तो जो कुछ भगवान ने किया वही स्वयं करना चाहता है। हे भगवान सर्वज्ञदेव ! आपने अपने आत्मा को ज्ञायकस्वभावी जानकर पर का ममत्व छोड़ दिया और परमात्मा बन गये। मेरा आत्मा भी आप जैसा ज्ञायकस्वभावी ही है - इसप्रकार जो जीव भगवान जैसे अपने आत्मा को पहिचाने, वही भगवान का सच्चा भक्त है; उसी ने भगवान को पहिचानकर उनकी भक्ति की है। ऐसी परमार्थ भक्ति सहित भगवान के बहुमान का उल्लास आने पर कहता है कि ''हे नाथ ! आप ही मेरे स्वामी हैं; आपने ही मुझे आत्मा दिया है।' धर्मी ऐसा बोलते हैं, वह कहीं मिथ्यात्व नहीं है; किन्तु यथार्थ विनय का व्यवहार है। धर्मात्मा के अंतर अभिप्राय को न समझकर अकेली भाषा को पकड़े तो वह बाह्यदृष्टि जीव धर्मात्मा को जानता ही नहीं; वह जड़भाषा को तथा शरीर को जानता है; किन्तु ज्ञानी के चैतन्यभाव को नहीं जानता। (क्रमशः)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि युद्ध में लड़ने के लिए क्यों जाता है?

उत्तर : सम्यग्दृष्टि युद्ध के प्रसंग को और तत्संबंधी द्वेष के अंश को परज्ञेयरूप से जानता है; परन्तु उसका कर्त्ता नहीं है; अतः निर्भय है।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि को भोग भोगते हुए भी कर्मबन्ध क्यों नहीं होता?

उत्तर : सम्यग्दृष्टि को साता-असातारूप जितनी विषय सामग्री है, वह सब अनिष्टरूप लगती है। जैसे किसी को अशुभकर्म के उदय से रोग, शोक, दरिद्रता आदि होवे तो वह उनसे छुटकारा पाने का अथक प्रयत्न करता है; तथापि अशुभोदय के कारण छुटकारा मिलता नहीं - भोगना ही पड़ता है; उसीतरह सम्यग्दृष्टि ने पूर्व में साता-असातारूप कर्म बाँधा है और उसके उदय में अनेक प्रकार की विषय सामग्री होती है, उन सबको सम्यग्दृष्टि दुःखरूप अनुभव करता है, उन्हें छोड़ने का विशेष प्रयत्न भी करता है; किन्तु जबतक छपकश्रेणी चढ़े नहीं; तबतक उनका छूटना अशक्य होने से परवश होकर भोगता है; तथापि अंतरंग में अत्यन्त विरक्ति होती है। यही कारण है कि भोगसामग्री को भोगते हुए भी सम्यग्दृष्टि को कर्मबन्ध नहीं होता।

प्रश्न : ज्ञानी के भोग को भी निर्जरा का कारण बताने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर : वहाँ भी वीतरागी दृष्टि कराने का ही प्रयोजन है, भोग के राग का पोषण कराने का नहीं। भोग के समय भी ज्ञानी की वीतरागी दृष्टि कैसी अबन्ध होती है, उस समय भी स्वभाव की श्रद्धा कैसी होती है - यह पहचान कराने का प्रयोजन है।

प्रश्न : भगवान तो परद्रव्य हैं, क्या सम्यक्त्वी भी पर की स्तुति करता है ?

उत्तर : भाई ! आपने अभी वीतराग परमात्मा के गुणों की महिमा जान नहीं पाई, इसीकारण आपको ऐसा प्रश्न उठा है। सर्वज्ञ परमात्मा के प्रति स्तुति का जैसा भाव ज्ञानी को उल्लसित होता है; वैसा अज्ञानी को कदापि नहीं होता। भले ही भगवान हैं तो परद्रव्य; परन्तु अपनी इष्ट-साध्य ऐसी जो वीतरागता और सर्वज्ञता जहाँ भगवान में देखता है, वहाँ उन गुणों

के प्रति बहुमान से धर्मी का हृदय उल्लसित हुए बिना नहीं रहता। वीतरागता का जिसे प्रेम है, वह वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा को देखते ही भक्ति में निमग्न हो जाता है। भले ही भक्ति के समय शुभराग है; परन्तु उसमें बहुमान तो वीतराग स्वभाव का ही प्रवाहित हो रहा है। इसी का नाम वीतराग भक्ति है।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि परद्रव्य से भिन्न अपने राग को दु:खरूप जानता है; तथापि उसको लड़ाई, व्यापार, विवाहादि का तीव्रराग क्यों होता है ?

उत्तर : सम्यग्दर्शन होने पर भी अभी अस्थिरता का राग है। परद्रव्य की क्रिया तो परद्रव्य के कारण होती है। अशुभराग आता है; किन्तु अनन्तानुबन्धी का राग नहीं होता। अन्दर तो शुभाशुभ राग से विरक्त है।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि को अशुभराग में अगले भव संबंधी आयु बंधती है क्या?

उत्तर : सम्यग्दृष्टि को अशुभराग आता तो है; परन्तु अशुभ के काल में आयु का बंध नहीं होता; क्योंकि सम्यग्दृष्टि को वैमानिक देव में जाना है; इसलिये शुभराग के काल में ही आयुष्य बंधती है।

प्रश्न : भरतजी ने बाहुबलीजी के ऊपर क्रोध से चक्र छोड़ा तब भी क्या उनके अन्दर उत्तमक्षमा थी ?

उत्तर : हाँ, भरतजी ने यद्यपि क्रोधावेश में बाहुबलीजी के ऊपर चक्र प्रहार किया था; तथापि उस समय भी भरतजी के अन्दर उत्तमक्षमा विद्यमान थी; क्योंकि उनके अन्दर अनन्तानुबन्ध करने वाले मिथ्यात्व का अभाव था। इसके विपरीत बाह्य से द्रव्यलिंगधारी मुनि हो और कोई वैरी आदि आकर शरीर के खण्ड-खण्ड करे; तथापि बाह्य से क्रोध न करे, तो भी उसके अन्दर में अनन्तानुबंध करने वाले मिथ्यात्व का सद्भाव होने से बाह्य में क्षमा धारण करते हुए भी उत्तमक्षमा नहीं कही जा सकती।

प्रश्न : क्या सम्यग्दृष्टि जीव स्त्री और माता को समान मानता है ?

उत्तर : स्वभावदृष्टि से देखने पर सभी जीव समान हैं। स्त्री का जीव मात्र स्त्रीपर्याय जितना ही नहीं है; किन्तु पूर्ण चैतन्य भगवान है और माता का जीव भी उसीप्रकार परिपूर्ण है। एकरूप स्वभावदृष्टि में कोई माता या स्त्री है ही नहीं। सिद्ध या निगोद, एकावतारी या अनन्तसंसारी, स्त्री या माता-सभी जीव परिपूर्ण चैतन्यस्वरूप एक समान हैं- ऐसी स्वभावदृष्टि में अनन्त वीतरागभाव आ जाता है।

समाचार दर्शन -

राजस्थान के नये राज्यपाल : श्री निर्मलचन्दजी जैन

जबलपुर दिगम्बर जैनसमाज के गौरव श्री निर्मलचन्दजी जैन को केन्द्र सरकार द्वारा राजस्थान प्रदेश का राज्यपाल मनोनीत किया गया। आपके महामहिम राज्यपाल पद पर आसीन होने से समस्त राजस्थानवासी हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। ज्ञातव्य है कि आप भारत वर्ष के प्रथम दिगम्बर जैन राज्यपाल हैं; अत: भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज हार्दिक प्रसन्नता को महसूस करते हुये अपने आपको गौरवान्वित महसूस कर रही है।

जबलपुर (म.प्र.) के प्रतिष्ठित भारिल्ल परिवार में जन्मे एडवोकेट श्री निर्मलचन्दजी जैन बचपन से ही तीक्ष्ण प्रज्ञा के धनी थे। आपने स्नातकोत्तर परीक्षा पास करने के बाद एल. एल. बी. की डिग्री प्राप्त करके अपने शैक्षणिक भविष्य को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की।

प्रारंभ से ही धर्मनिष्ठ और सेवा भावना से ओतप्रोत श्री जैन आर. एस. एस. के कार्यकर्ताओं में सदैव अग्रणी भूमिका निभाते रहे। आपातकाल में आपको मीसा के तहत गिरफ्तार किया गया तथा आप टीकमगढ़ व सागर के जेल में भी रहे।

सन् 1977 के चुनाव में आप जनता पार्टी के टिकिट से खड़े हुये तथा भारी बहुमत से विजयी होकर सांसद बने। फिर श्री सुन्दरलाल पटवा के शासनकाल में आपको 1990 से 1992 तक मध्यप्रदेश का महाधिवक्ता बनाया गया। 1998 से 2000 तक आप केन्द्रीय वित्त आयोग के सदस्य रहे।

ज्ञातव्य है कि सन् 1977 में जब श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर का उद्घाटन तात्कालिक मुख्यमंत्री श्री भैरोसिंहजी शेखावतजी के करकमलों से किया गया था, तब श्री जैन विशिष्ट अतिथि के रूप में टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर पधारे थे।

आप सुप्रसिद्ध समाजसेवी, धर्मनिष्ठ एवं जैनसमाज की अनेक धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं के पदाधिकारी हैं।

आपकी इस गौरवमयी उपलब्धि पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, वीतराग-विज्ञान (मासिक) एवं जैनपथ प्रदर्शक परिवार की ओर से हार्दिक बधाई !

बाल संस्कार शिविर सानन्द सम्पन्न

औरंगाबाद (गारखेड़ा): यहाँ 26 अप्रैल से 2 मई 03 तक बाल संस्कार शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें ब्र. यशपालजी जैन जयपुर के दोनों समय जिनधर्म प्रवेशिका पर एवं दोपहर में गुणस्थान विवेचन पर सरस एवं प्रभावी शैली में प्रवचन हुए।

इस अवसर पर पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी के प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित गुलाबचंदजी बोरालकर एलोरा, पण्डित प्रदीपजी माद्रव एलोरा एवं पण्डित संजयजी राऊत के प्रवचनों का लाभ समाज को प्राप्त हुआ।

शिविर में बालबोध भाग-1, 2, 3 एवं छहढाला की कक्षायें पण्डित रीतेशकुमारजी शास्त्री सनावद, पण्डित अमोल संघई कात्नेश्वर, पण्डित जितेन्द्र राठी पारशिवनी, पण्डित प्रशांत मोहरे सोलापुर, पण्डित संतोष सावजी अंबड़ एवं पण्डित दीपकजी डांगे ने ली।

इस शिविर में अनेक बालक-बालिकाओं ने कण्ठपाठ में भाग लेकर छहढाला, कुन्दकुन्द शतक, जिनधर्म-प्रवेशिका आदि अनेक ग्रन्थ सुनाये; जिन्हें हजारों रूपये के पुरस्कार भी दिये गये।

गुरुदेव का भावभीना स्मरण

जबलपुर (म. प्र.): बड़ा फुहारा स्थित श्री महावीर दिगम्बर जैनमंदिर में गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की जन्मजयन्ती के अवसर पर द्विदिवसीय कार्यक्रम के प्रथम दिन **गुरुदेव और उनसे प्राप्त निधियाँ** विषय पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया; जिसमें मुख्य वक्ता पण्डित ज्ञानचंदजी जैन के अतिरिक्त अनेक वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये। सायंकालीन सभा में पण्डित विरागजी शास्त्री का गुरुदेव विषयक व्याख्यान हुआ।

द्वितीय दिन प्रात: दैनिक पूजन के पश्चात् पण्डित विराग शास्त्री के निर्देशन में नवगठित फैडरेशन के सदस्यों द्वारा मौन नाटिका **ये है क्रान्ति गुरुदेव की** का प्रभावी मंचन हुआ। साथ ही श्रीमती स्मिता अरहंत जैन के निर्देशन में पाठशाला के बालक-बालिकाओं द्वारा **गुरुदेव के परिवर्तन** पर नाटक प्रस्तुत किया गया।

- अभिषेक जैन

शिविर एवं विधान सानन्द सम्पन्न

चिन्तामणी पार्श्वनाथ (अहमदाबाद) : यहाँ श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र में दिनांक 1 मई से 6 मई 2003 तक आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर एवं चौसठ ऋद्धि विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर तार्किक विद्वान डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी के प्रात: समयसार एवं रात्रि में मोक्षमार्गप्रकाशक पर सारगर्भित प्रवचन हुये।

साथ ही पण्डित शैलेषभाई तलोद, पण्डित विक्रांत शहा शास्त्री सोलापुर एवं पण्डित अशोक जैन शास्त्री रायपुर के प्रवचनों का लाभ मिला। पण्डित विवेकजी सिवनी द्वारा बालकक्षा ली गई। विधि-विधान के कार्य पण्डित रजनीभाई हिम्मतनगर द्वारा सम्पन्न कराये गये।

इस अवसर पर अखिल भारतीय तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट के महामंत्री श्री वसंतभाई दोशी मुम्बई का सम्मान किया गया। समस्त कार्यक्रम का आयोजन श्री दिग. जैन रायदेश-गुजरात समाज ने किया।

वैराग्य समाचार

1. श्री बाहुबली विद्यापीठ, कुम्बोज बाहुबली के संचालक एवं सन्मति (मराठी मासिक) पत्रिका के प्रधान सम्पादक ब्र. माणिकचन्दजी भिसीकर का स्वर्गवास 20 अप्रैल, 03 को हो गया है। आप जैनदर्शन के वयोवृद्ध विद्वान थे। आपके देहावसान से जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

आचार्य श्री समन्तभद्रजी महाराज द्वारा दक्षिण में पुनरुज्जीवित गुरुकुल शिक्षण प्रणाली के आप एक प्रमुख आधारस्तंभ थे। आपके मार्गदर्शन में ही विद्यापीठ का विकास हुआ और वह विद्यापीठ अनेक गुरुकुलों व विद्यालयों की शाखा प्रशाखाओं का वटवृक्ष बन गया।

विद्यापीठ के कुशल संचालन के साथ ही साथ आप तत्त्वज्ञान के मर्मज्ञ भी थे। सन्मति (मासिक) के सम्पादकियों में आपके अध्ययन की गहराई व मननशीलता दृष्टिगोचर होती है। तत्त्वज्ञान व अध्यात्म रुचि के फलस्वरूप ही आपका पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से अत्यन्त निकट व मधुर सम्बन्ध रहा। आपके मार्गदर्शन में संचालित गुरुकुलों में छात्रों को प्रेरणा देकर आप प्रतिवर्ष श्री टोडरमल महाविद्यालय में अध्ययन हेतु अनेक छात्रों को भेजते रहे हैं।

जैनधर्म के प्रचार को समर्पित ऐसे व्यक्तित्व का समाज सदैव ऋणी रहेगा। दिवंगत आत्मा शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो - यही भावना है।

2. बगडीनगर (राजस्थान) निवासी श्री संपतराजजी जुगराजजी जैन का 70 वर्ष की आयु में दिनांक 26 मार्च, 2003 को मुम्बई में देहावसान हो गया है। आप सरल स्वभावी, मृदुभाषी श्रावक थे। अनेक धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं के आप आजीवन ट्रस्टी रहे।

आपको दादाभाई नौरोजी इंटरनेशनल सोसायटी यू.के. द्वारा समाज सेवा हेतु 'दादाभाई नौरोजी मिलेनीयम पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। आपकी स्मृति में परिवार की ओर से वीतराग-विज्ञान को 251/-रुपये प्राप्त हुये हैं; एतदर्थ धन्यवाद !

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों - ऐसी मंगल कामना है।

पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री का विदेश कार्यक्रम

डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल की तरह उन्हीं के शिष्य पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिंदवाड़ा भी धर्मप्रचारार्थ दिनांक 30 मई से 14 जुलाई 2003 तक अमेरिका जा रहे हैं। उनका वहाँ कार्यक्रम इसप्रकार है ह्न 30 मई को दिल्ली से प्रस्थान करके 5 जून तक डिट्रोयेट, 6 जून से 11 जून तक मियामी, 12 जून से 18 जून तक शिकागो, 19 जून से 24 जून तक सियेटल, 25 जून से 30 जून तक वाशिंगटन, 1 जुलाई से 6 जुलाई तक सिनसिनाटी, 7 जुलाई से 14 जुलाई तक डलास। अमेरिका प्रवास के दौरान जिन स्थानों पर डॉ. भारिल्ल ठहरेंगे, उन्हीं स्थानों पर पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री भी ठहरेंगे। डिट्रोयेट और सियेटल ही दो स्थान हैं, जहाँ डॉ. भारिल्ल नहीं जा रहे है; अत: वहाँ पण्डित अभयकुमारजी से निम्न स्थान पर सम्पर्क किया जा सकता है ह्न

डिट्रोयेट- अनंत कोरडिया - 248-681-1333

सियेटल ह्न प्रकाश जैन - (नि.) 425-881-6143 (ऑ.) 425-707-5308

डॉ. भारिल्ल का 2003 में विदेश कार्यक्रम

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी धर्मप्रचारार्थ विदेश जा रहे हैं। अमेरिका की यह उनकी 20 वीं विदेश यात्रा है। उनका नगरवार कार्यक्रम निम्नानुसार है। जिन भारतवासी बन्धुओं के परिवार या सम्बन्धी निम्नस्थानों पर रहते हों, उन्हें वे सूचित कर दें। उनकी सुविधा के लिए उन लोगों के फोन एवं फैक्स नम्बर भी दिये जा रहे हैं, जिनके यहाँ डॉ. भारिल्ल ठहरेंगे।

क्र.	शहर	सम्पर्क-सूत्र	दिनांक
1.	डलास	अतुल खारा (घर) 972-867-6535 (ऑ.)972-424-4902 (फै.)972-424-0680 E-mail : insty@airmail.net	20 से 25 जून
2.	शिकागो	निरंजन शाह 847-330-1088 डॉ. विपिन भायाणी (घर) 815-939-0056 (ऑ.)815-939-3190 (फै.) 815-939-3159	26 जून से 30 जून
3.	सिनसिनाटी	विजय दोशी (घर) 513-779-2112 अतुल खारा (घर) 972-867-6535 महेन्द्र शाह (घर) 305-595-3833	1जुलाई से 5 जुलाई
4.	वाशिंगटन डी.सी.	नरेन्द्र जैन (घर) 703-426-4004 (फैक्स) 703-321-7744 रजनीभाई गोसालिया (घर) 301-464-5947 (ऑ.) 202-529-2140	6 से 10 जुलाई
5.	ह्यूस्टन	भूपेश सेठ (घर) 281-261-4030 (ऑ.)713-339-3778 प्रतिमा देसाई (घर) 281-859-3661	11 से 15 जुलाई
6.	मियामी	महेन्द्र शाह (घर) 305-595-3833 (ऑ.)305-371-2149 E-mail : bhitap@bellsouth.net	16 से 21जुलाई